National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(67): 97-100
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ.उपेन्द्र कुमार चौधरी
वरीय सहायक प्राचार्य (संस्कृत),
महंत-केशव- संस्कृत महाविद्यालय,
फतुहा, पटना।

Correspondence:
डॉ.उपेन्द्र कुमार चौधरी
वरीय सहायक प्राचार्य (संस्कृत),
महंत-केशव- संस्कृत महाविद्यालय,
फतुहा, पटना।

वैदिक साहित्य में गौ-तत्त्व और गव्यों की उपादेयता

डॉ.उपेन्द्र कुमार चौधरी

सारांश -

वैदिक संस्कृति भारतीय सभ्यता की प्राचीनतम और समृद्ध सांस्कृतिक धारा है, जिसमें गौ को केवल एक पशु नहीं बल्कि जीवन, धर्म और समृद्धि का प्रतीक माना गया है। वैदिक साहित्य में गौ एवं उससे प्राप्त गव्य पदार्थों—दूध, दही,घृत , गोमूत्र और गोमय(गोबर)—का धार्मिक, औषधीय, सामाजिक एवं आर्थिक महत्व व्यापक रूप से वर्णित है। प्रस्तुत शोध आलेख में वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रंथों एवं स्मृतियों के साक्ष्यों के आधार पर गौ एवं गव्यों की भूमिका का समग्र अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्द: वैदिक संस्कृति, गौ, गव्य, पंचगव्य, यज्ञ, धर्म

1.प्रस्तावना -

वैदिक सभ्यता मूलतः कृषि एवं पशुपालन आधारित थी। उस काल में गौ मानव जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रमुख साधन थी। ऋग्वेद में गौ को 'अघ्न्या' कहा गया है,"अघ्न्येयं सा नो मृळा" जिसका तात्पर्य है—जिसे मारा न जाए। यह तथ्य स्पष्ट करता है कि वैदिक समाज में गौ के प्रति करुणा, संरक्षण और श्रद्धा का भाव विद्यमान था। गौ न केवल भौतिक समृद्धि की प्रतीक थी, बल्कि धार्मिक और नैतिक मूल्यों की आधारशिला भी थी।

2.उद्देश्य-

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों एवं आयुर्वेदिक ग्रंथों के साक्ष्यों के आधार पर गौ-तत्त्व एवं गव्य पदार्थों की अवधारणा का विश्लेषण करना तथा उनकी धार्मिक, औषधीय और सामाजिक प्रासंगिकता को रेखांकित करना है।

3. वैदिक साहित्य में गौ की अवधारणा

3.1 ऋग्वेद में गौ-

ऋग्वेद में गौ का उल्लेख अनेक अर्थों में हुआ है—धन, प्रकाश, पृथ्वी और वाणी के रूप में। 'गावो विश्वस्य मातरः' के माध्यम से गौ को संपूर्ण सृष्टि की माता कहा गया है। वैदिक ऋषियों ने गौ को जीवनदायिनी शक्ति के रूप में देखा, जो मानव समाज को पोषण प्रदान करती है।

ऋग्वेद में गौ को 'अघ्न्या' (जिसे मारा न जाए) कहा गया है—

द्विङ्कुण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात्।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥[1]

"गावो भगा गाव इन्द्रस्य वाजाः"[2]

"माता रुद्राणां दुहिता वसूनाम्"[3]

इन मंत्रों में गौ को देवताओं की माता, ऐश्वर्य एवं अन्नदाता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। यह मंत्र गौ की अहिंसात्मक, पूजनीय तथा समृद्धिदायिनी प्रकृति को रेखांकित करते हैं।

3.2 यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में गौ –

यजुर्वेद में यज्ञीय कर्मकाण्ड में गौ और गव्यों का प्रयोग अनिवार्य रूप से वर्णित है—

"गावो यज्ञाय कल्पन्ताम्"[4]

"इयं गौः पवते धियं" (सामवेद)

यजुर्वेद में यज्ञीय अनुष्ठानों में घृत, दूध और दही के प्रयोग को अनिवार्य माना गया है।

अथर्ववेद में गौ की रक्षा को राष्ट्र की समृद्धि, शान्ति और आरोग्य से जोड़ा गया है—

"गावो नो मित्रा वरुणो जुशन्ताम्"[5]

"गौः प्राणानां प्रतिमा" (अथर्ववेद)

यहाँ गौ-रक्षा तथा गव्यों के औषधीय एवं शुद्धिकारक प्रयोगों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

इससे स्पष्ट होता है कि गौ का महत्व केवल धार्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक कल्याण से भी जुड़ा था।

4.गौ-तत्त्व का दार्शनिक पक्ष -

उपनिषदों में गौ का प्रयोग प्रतीकात्मक एवं दार्शनिक अर्थों में हुआ है। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है—

"गौरिति वाक्"[6]

बृहदारण्यक उपनिषद् में गौ को प्राण और यज्ञ से जोड़ा गया है—

"एषा वा एतद् गौः प्राणः" (बृहदारण्यक उपनिषद्)

इस प्रकार गौ यहाँ केवल पशु न रहकर ज्ञान, वाणी और प्राण-शक्ति की वाहिका बन जाती है।

5. यज्ञ परंपरा में गौ एवं गव्य -

वैदिक यज्ञ प्रणाली का आधार गव्य पदार्थ थे। घृत को देवताओं का प्रिय आहार माना गया और इसे अग्नि में आहुति के रूप में अर्पित किया जाता था। गोबर से यज्ञवेदी की शुद्धि की जाती थी, जबकि गोमूत्र का प्रयोग शुद्धिकरण कर्मों में होता था। इस प्रकार गव्य पदार्थों ने वैदिक धार्मिक जीवन को संरचित किया।प्राचीन काल में स्पष्ट मान्यता थी कि 'यज्ञ' लोक कल्याण हेतु अत्यन्त आवश्यक हैं। यज्ञ से ही बादल बनते हैं। बादलों से वृष्टि होती है तथा वृष्टि से ही अन्न उत्पन्न होते हैं। ' आज भी विविध प्रयोगों द्वारा यज्ञ की सार्थकता सिद्ध हो रही है। तथा अन्नोत्पादन में भी यज्ञ की अनुकूल भूमिका सिद्ध हो रही है।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।[7]

6.पंचगव्य की अवधारणा और आयुर्वेदिक दृष्टि -

गाय से प्राप्त होने वाले पदार्थों को गव्य कहते हैं। पंचगव्य—दूध, दही, घी, गोमूत्र और गोबर—वैदिक एवं आयुर्वेदिक परंपरा का महत्वपूर्ण तत्व है। पंचगव्य के औषधीय गुणों का वर्णन चरक संहिता में किया गया है। चरक संहिता, और सुश्रुत संहिता में पंचगव्य को रोगनाशक, कफ-वात-पित्त संतुलक एवं शुद्धिकारक बताया गया है।

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
निर्दिष्टं पञ्चगव्यं तु पवित्रं मुनिपुङ्गवैः ॥[8]

इनमें कुशोदक मिला देने सुरक्षित एवं शुद्ध पञ्च गव्य हो जाता है। पञ्च गव्य में वरुण आदि देवों का निवास माना जाता है। इसलिए इसके पान से आत्मशुद्धि तथा भूमि पर छिड़कने से भूमि की शुद्धि होती है।इसके निर्माण की विधि शास्त्रों में निम्नक्रम से दी गई है गोमूत्र-१ पल,गोमय- अंगुष्ठ की मोटाई का आधा,दूध-७पल, दही-३पल,घृत-१पल और कुशोदक१ पल

पलमात्रं तु गोमूत्रं अंगुष्ठार्ध तु गोमयम् ।
क्षीरं सप्तपलं ग्राह्यम् दधि त्रिपलमीरितम् ॥
सर्पिस्त्वेकपलं देयमुदकं पलमात्रकम् ॥

6.1 पञ्चामृत - गाय का दूध, दधि, घृत, मधु और शर्करा । इनके मिश्रण को पञ्चामृत कहा गया है । पञ्चगव्य और पञ्चामृत दोनों ही आत्मशुद्धि के पदार्थ होने के साथ-साथ यज्ञीय प्रमुख पदार्थ भी हैं। गाय के दूध में बने पुरोडास को दूध, दही और घृत से युक्त कर देने पर 'साम्नाय' नामक हविष्य बनता है। इसी हविष्य से दर्श और पौर्णमास यज्ञों में आहुतियाँ दी जाती हैं।

पञ्चगव्य और पञ्चामृत के स्नान करने तथा इनका पान करने से बाय-आन्तरिक और आध्यात्मिक शुद्धि के साथ-साथ शारीरिक बल एवं सौन्दर्य की वृद्धि होती है।

6.2 घृत – 'पक्वनवनीतं घृतम्' अर्थात् पके हुए मक्खन को घृत (घी) कहते हैं।दीर्घायु की कामना से अग्नि में घृत की लक्षसंख्यक आहुति दी जाती है।[9]

घृत यज्ञ का प्राण माना गया है—

"घृतं यज्ञस्य नाभिः" (शतपथ ब्राह्मण)

"घृतेन द्यावापृथिवी अभ्यक्ते"[10]

घृत को देवताओं तक आहुति पहुँचाने वाला माध्यम माना गया है।

घृत को आयुर्वेद में श्रेष्ठ औषधीय माध्यम कहा गया है—

"घृतं स्मृतिमेधाग्निबलायुष्यकरं परम्"[11]

सुश्रुतसंहिता में भी कहा गया है—

"सर्वेषामेव स्नेहानां घृतं श्रेष्ठतमं मतम्"[12]

घृत के सेवन से बल और ओज की वृद्धि होती है। यह बुद्धि, शुक्र, ओज, स्मृति और कफ को बढ़ाने वाला तथा वात-पित्त-विष, उन्माद, और शोथ को दूर करने वाला है। साथ ही साथ व्रण(घाव,जख्म) आदि के उपचार में भी घी का प्रयोग होता है। अन्धक - शिव युद्ध में अन्धक क्षत विक्षत हो जाने पर शिव का रूप धारण कर पार्वती के पास जाता है। उसे देख पार्वती ने अपने दासियों से कहा पुराना घी,

बीजिका, लवण और दही लाओ मैं स्वयं शिव के व्रणों का उपचार करूँगी।[13]

नवनीत - नवनीत दो प्रकार का होता है। १. **दही से तत्काल निकाला हुआ नवनीत** (मक्खन) २. **दुग्ध से निकाला हुआ नवनीत** । इन दोनों के गुणधर्मों में भी सामान्य अन्तर है। दही से उत्पन्न नवनीत बालक और वृद्धों के लिए प्रशस्त है। यह बलवर्द्धक होता है।बालवृद्धानां प्रशस्तत्वम्, बल कारित्वम् दुग्ध से उत्पन्न नवनीत नेत्र ज्योति को बढ़ाने वाला तथा रक्त दोष और पित्त दोष को नष्ट करने वाला होता है।

दुग्धोत्थं नवनीतं तु चाक्षुष्यं रक्तपित्तनुत् ।

दधि - " क्षीरोत्तरावस्थाभाव: दधिः अर्थात् दुग्ध की अन्तिम अवस्था का अभाव हो जाना दधि कहलाता है । अर्थात् जब दुग्ध का स्वरूप पूर्णरूपेण बदल जाता है उसे दधि कहते हैं। यह बात वृद्धि करने वाला तथा पिपासा को शान्त करने वाला होता है।दधि के गुणों का उल्लेख करते हुए कहा गया है—

"दधि दीपयति अग्निं बल्यं गुरु च कफप्रदम्"[14]

रात्रि में दधि सेवन का निषेध किया गया है।रात्रौ दधि न भुञ्जीत । यदि खाना ही हो तो उसमें शर्करा, मधु, मूँग तथा आँवला मिलाकर खाना चाहिए।

तक्र- तक्र (मट्ठा) तीन प्रकार का होता है।

समुद्धृतघृतं तक्रं अर्धोद्धृतघृतं तथा ।
अनुद्धृतघृतं चान्यत् इत्येतत् त्रिविधं मतम्।

१. दधि का घोल जिससे सम्पूर्ण घृत निकाल लिया गया हो।

२. दधि का घोल जिससे आधा घृत निकाल लिया गया हो।

३. दधि का घोल जिससे घृत न निकाला गया हो।

अन्य मत से तक्र (मट्ठा) पाँच प्रकार का होता है । १. घोल, २. मथित, ३. तक्र, ४. उस्वित तथा ५. छच्छिका

ससरं निर्जलं घोलं मथितं त्वसरोदकम् । तक्रं पादजलं प्रोक्तं उदस्वित् अर्धवारिकम् ॥ छाच्छिका सरहीनं स्यात् अच्छा प्रचुरवारिकम् ॥

इनके लक्षण क्रमश: इस प्रकार हैं।

१. **घोल** - जल रहित दधि का घोल

२. **मथित** - दधि को अच्छी तरह 'मथ' कर तैयार किया गया जल

३. **तक्र** – दधि और उसकी मात्रा काजल |

४. **उदस्वित्**- आधा दधि + आधा जल मिलाकर मन्थन द्वारा तैयार घोल।

५. **छच्छिका** - दधि की मात्रा से अधिक जल डाल कर मन्थन किया गया घृत रहित घोल ।

दुग्ध (क्षीर) - दुग्ध को सम्पूर्ण भोजन माना जाता है। क्योंकि इसमें शरीर पोषक लगभग सभी तत्व पाए जाते हैं। दुग्धपान से आयु की वृद्धि होती है। इसीलिए जन्म दिन पर बच्चों को दुग्ध, गुड़ और तिल पिलाया जाता है।

सतिलं गुडसम्मिश्रं अञ्जल्यर्धमितं पयः ।
मार्कण्डेयाद् वरं लब्ध्वा पिबाम्यायुर्विवृद्धये ॥

चरकसंहिता में क्षीर को ओजवर्धक एवं रसायन कहा गया है—

"क्षीरं जीवनीयं बल्यं स्निग्धं रसायनं परम्"[15]

साथ ही क्षीर से बना हुआ भोज्य पदार्थ पायस (खीर) का हवन करने तथा इसका सेवन करने से बल-ओज एवं नैरुज्य की प्राप्ति होती है ।

स्वजन्म दिवसे मस्तु पायसैर्मधुरान्वितैः ।
जुहोति तस्य वर्धन्ते कमलारोग्यकीर्तयः ।।

क्षीर के भेद - दूध (क्षीर) दो प्रकार का होता है । १. पेयूष २. मोरट।

प्रसव काल से सात दिनों तक का दूध पेयूष कहा जाता है। सात दिनों के बाद का दूध 'मोरट' कहलाता है।

आसप्तरात्रं प्रसवात् क्षीरं पेयषमूह्यते ।
परतो मोरटं विद्याद् अप्रसन्नं कफात्मकम् ।।

गोमूत्र - शरीर की आभ्यन्तर एवं बाह्य शुद्धि करने वाला द्रव्य है किन्तु आयुर्वेद इसके अन्य गुणों का उल्लेख करते हुए इसे औषधि के रूप में वर्णित किया है।"गोमूत्रं कटुकं तीक्ष्णं दीपनं कफवातजित्"[16]

इसके गुण-धर्म का विवेचन निम्न प्रकार मिलता है -

'गोमूत्रं कटु तीक्ष्णोष्णं सक्षारत्वान्न वातलम् ।
लघ्वग्नि दीपनं मेध्यं पित्तलं कफ वातजित् ।
शूलगुल्मोदरानाह विरेका स्थापनादिषु ।
मूत्रप्रयोगसाध्येषु गव्यं मूत्रं प्रयोजयेत्॥

यह मूत्र के गुण और लक्षण को बताते हुए यह निर्देश दिया गया है कि जब भी मूत्र चिकित्सा देनी हो तो केवल गोमूत्र का ही प्रयोग करें।

गोमय - यज्ञाग्नि का आधार 'कण्डिका' के रूप में प्रयोग में आता है। कण्डिका भस्म आरोग्य कारक तथा कृमि नाशक कहा गया है। इसीलिए गोमय का प्रयोग पञ्चगव्य में शरीर शोधन हेतु भी किया जाता है। गौ और गौ से प्राप्त गव्यों पर विचार करने से यह सिद्ध होता है कि गौ पालन और गौ सेवा निश्चय ही मानवमात्र के कल्याण के लिए है। अष्टाङ्ग हृदय की यह उक्ति "अन्नं गव्यं तु जीवनीयं रसायनम्" सर्वथा सत्य है। पुराणों में अनेक कथाएँ हैं जो गौ सेवा के महत्व को प्रतिपादित करती है। राजा दिलीप की गो सेवा सर्वविदित ही है। आज भी गो सेवा दुख-दारिद्र्य और व्याधियों से छुटकारा दिलाकर मनुष्य को दीर्घायुष्य प्रदान करने में सक्षम है।

इससे यह सिद्ध होता है कि गव्य पदार्थ केवल धार्मिक उपयोग तक सीमित नहीं थे, बल्कि वैज्ञानिक और चिकित्सकीय दृष्टि से भी उपयोगी थे।

7. सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में गौ का स्थान

वैदिक समाज में गौ को संपत्ति की इकाई के रूप में स्वीकार किया गया था। गोदान को सर्वश्रेष्ठ दान माना गया। कृषि, दुग्ध उत्पादन, परिवहन तथा ग्राम्य अर्थव्यवस्था गौपालन पर आधारित थी। गौ समाज की आर्थिक स्थिरता और आत्मनिर्भरता का प्रतीक थी। गाय को सम्पत्ति का मानक माना जाता था। इसलिए आज भी इसे 'गोधन' कहा जाता है। एक बार वामदेव ऋषि ने क्रोध में आकर पूछा कि वह कौन है जो मेरे इन्द्र को १० गायों में खरीदना चाहता है।' यह तो हजार या दस हजार गायों से भी नहीं खरीदा जा सकता। शतपथ ब्राह्मण भी गायों को सम्पत्ति का सूचक मानता है। दक्षिणा के रूप में द्रव्य के स्थान पर गायों को देने का निर्देश देता है। '

ऋग्वेद तो गायों को धन ही नही अपितु, सर्वस्व ही मानता है। कहा गया है — गाय ही सूर्य है, गाय ही इन्दु है गाय ही सर्वस्व है' इत्यादि । इस प्रकार गायों की महत्ता प्रतिपादित करते हुए गौ की प्रार्थना की गई है

गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदय: सन्तु, गवां मध्ये वसाम्यहम् ।।[17]

अर्थात् "गायें मेरे आगे हों। मेरे पीछे हो, गाय ही मेरा हृदय हो। हम सदैव गायों के बीच में निवास करें। अभिप्राय यही कि हमारे लिए सभी प्रकार से उपयोगी, सम्पत्ति सूचक तथा गव्यों के कारण यज्ञ आदि में अत्यन्त उपयोगी गायें हमारे पास सदैव रहें। अन्न की आवश्यकता - महर्षि पराशर ने लिखा है कि अन्न ही प्राण है .अन्न ही बल है, अन्न ही सभी कार्यों का साधक है। न केवल मनुष्य ही अपितु देवता और असुर आदि सभी का जीवन अन्न पर ही आश्रित है।

अन्नं प्राणा बलं चान्नं अन्नं सर्वार्थसाधनम् ।
देवासुरमनुष्याश्च सर्वे चान्नोपजीविनः ।।[18]

8. नैतिक एवं सांस्कृतिक महत्व -

गौ-रक्षा को धर्म का अनिवार्य अंग माना गया। मनुस्मृति और महाभारत में गौहत्या को महापाप बताया गया है।मनुस्मृति, 11.109 गौ वैदिक संस्कृति में अहिंसा, करुणा और मातृत्व की सजीव प्रतिमूर्ति है। इस प्रकार गौ का महत्व केवल उपयोगितावादी न होकर नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों से भी जुड़ा हुआ है।

9. आधुनिक परिप्रेक्ष्य में वैदिक गौ-दृष्टि -

आधुनिक युग में पर्यावरण संकट, रासायनिक कृषि और स्वास्थ्य समस्याओं के संदर्भ में वैदिक गौ-दृष्टि अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती है। जैविक खेती में गोबर और गोमूत्र का उपयोग, आयुर्वेदिक चिकित्सा में गव्य पदार्थों का प्रयोग तथा सतत विकास की अवधारणा वैदिक परंपरा की वैज्ञानिकता को प्रमाणित करती है।

10. निष्कर्ष -

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वैदिक संस्कृति में गौ एवं गव्य जीवन के सर्वांगीण विकास के आधार थे। वैदिक साहित्य में गौ-तत्त्व बहुआयामी है—धार्मिक, दार्शनिक, आर्थिक,औषधीय, नैतिक और पर्यावरणीय—सभी दृष्टियों से गौ का स्थान अद्वितीय रहा है। गव्यों की अवधारणा वैदिक जीवन-पद्धति की वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक दृष्टि को प्रकट करती है।आधुनिक समाज यदि वैदिक गौ-संस्कृति के मूल सिद्धांतों को आत्मसात करे, तो मानव जीवन अधिक संतुलित, स्वस्थ और पर्यावरण-अनुकूल बन सकता है।

संदर्भ ग्रंथ-

ऋग्वेद। सायण भाष्य सहित। चौखम्भा संस्कृत सीरीज़ ऑफिस, वाराणसी।
यजुर्वेद। चौखम्भा प्रकाशन।
अथर्ववेद। चौखम्भा ओरिएंटलिया।
शतपथ ब्राह्मण। चौखम्भा प्रकाशन।
शर्मा, रामकरण, और भगवन् दास। चरक संहिता। चौखम्भा संस्कृत सीरीज़ ऑफिस, 2001।
द्विवेदी, गिरिजा। सुश्रुत संहिता। चौखम्भा ओरिएंटलिया।
ब्यूहलर, जॉर्ज। मनुस्मृति। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1886।
गांगुली, के. एम. महाभारत। कलकत्ता, 1883– 1896।

संदर्भ

1. (ऋग्वेद 1.164.27)
2. (ऋग्वेद 6.28.5)
3. (ऋग्वेद 8.101.15)
4. (यजुर्वेद)
5. (अथर्ववेद 12.1.45)
6. (छान्दोग्य उपनिषद् 1.6.7)
7. 3.14।।श्रीमद् भगवद्गीता
8. सूत्रस्थान 1.62 चरक संहिता
9. आयुः कामो घृतेनाग्नौ जुहुयाल्लक्ष संख्या ।
10. (ऋग्वेद 1.164.50)
11. (चरकसंहिता, सूत्रस्थान)
12. (सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान)
13. घृतमानय पौराणं बीजिका लवणं दधि ।
    ब्रणभंग करिष्यामि स्वयमेव पिनाकिनः । वामन पुराण
14. (चरकसंहिता)
15. (चरकसंहिता, सूत्रस्थान)
16. (सुश्रुतसंहिता)
17. भविष्यपुराणम् /पर्व ४ (उत्तरपर्व)/अध्यायः ०१९।। ७ ।।
18. कृ. पा. १.६